उत्तरापथ का व्यापारिक मार्ग

लक्ष्मी कांत सिंह*

प्राचीनकाल में उत्तरापथ का उल्लेख भारतवर्ष के एक प्रादेशिक ईकाई के रूप में किया गया है। जबकि यह भी सत्य है कि उत्तरापथ एक व्यापारिक मार्ग के रूप में भी जाना जाता था, जिसका पूर्वी टर्मिनस ताम्रलिप्ती तक तथा पश्चिम में बैक्ट्रिया तक को जोड़ता था। उत्तरापथ मार्ग पर बल्ख की स्थिति ऐसी थी, जहाँ एक रास्ता मध्य एशिया से आकर यहाँ मिलता था।

बल्ख की ख्याति इसी बात में थी कि यहाँ संसार की चार महाजातियाँ यथा भारतीय, ईरानी, शक और चीनी मिलती थीं। इन देशों के व्यापारी अपने तथा अपने जानवरों के लिए खाने–पीने का प्रबंध करते थे और अपने समान का अदान–प्रदान भी। आज दिन भी, जब उस प्रदेश का व्यापार घट गया है, मजार शरीफ में, जिसने बल्ख का स्थान ग्रहण कर लिया है, व्यापारी इकठा होते हैं। बल्ख का व्यापारिक महत्त्व होने पर भी वह कभी बड़ा शहर नहीं था और इसका कारण यही है कि उसमें रहने वाले लोग फिरन्दर थे और एक जगह जमकर नहीं रहना चाहते थे।

बल्ख से होकर महाजनपथ पूर्व की और चलते हुए बदख्शाँ, बखाँ तथा पामीर की घटियाँ पार करते हुए काशगर पहुँचता था और वहाँ से उत्तरी अथवा दक्षिणी रास्तों से होकर चीन पहुँच जाता था। इन रास्तों से भी अधिक उस रास्ते का महत्त्व था जो उत्तर की ओर चलता हुआ वंक्षु नदी पर पहुँचता था और उसे पार करके सुग्ध और शकद्वीप होता हुआ यूरो–एशियाई रास्तों से जा मिलता था। बल्ख के दक्षिणी दरवाजे से महापथ भारत को जाता था। हिन्दुकुश और सिन्धु नदी को पार करके यह रास्ता तक्षशिला पहुँचता था और वहाँ वह पाटलिपुत्र वाले महाजनपथ से जा मिलता था। यह महाजनपथ मथुरा में आकर दो शाखाओं में बँट जाता था एक शाखा तो पटना होती हुई ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह को चली जाती थी और दूसरी शाखा उज्जयिनी होती हुई पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित भरूकच्छ को चली जाती थी।

बल्ख से होकर तक्षशिला तक इस महाजनपथ को कौटिल्य ने हैमवतपथ कहा है। साँची के एक अभिलेख से यह पता लगता है कि भिक्षु कोसपगोत ने सबसे पहले यहाँ बौद्धधर्म का प्रचार किया।[1] हिन्दूकुश से होकर उत्तर–दक्खिन में कन्धार जाने वाली सड़क की अभी बहुत कम जाँच–पड़ताल हुई है। इसके विपरीत पूर्व से पश्चिम जाने–वाली सड़क का हमे अच्छी तरह से पता है। इस रास्ते पर पहले हेरात भरतवर्ष की कुंजी माना जाता था लेकिन वास्वविक तथ्य यह है कि इस देश की कुंजी काबुल या जलालाबाद, पेशावर अथवा अटक मेगं खोजनी होगी।

कन्धार का आधुनिक शहर भारत से दो रास्तों से सम्बद्ध है। एक रास्ता

* शोध छात्र, इतिहास विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पूरब जाते हुए डेरागाजीखाँ। के पास सिन्ध पर पहुँचता है और वहाँ से होकर मुलतान। दूसरा रास्ता दक्खिन–पूरब होता हुआ बोलन के दरें से होकर शिकारपुर के रास्ते कराची पहुँचता है। भारत से कन्धार और हेरात का यही ठीक रास्ता है, जो मर्व के रास्ते से कुश्क में मिल जाता है।

उपर्युक्त हैमवतपथ तीन खण्डों में बाँटा जा सकता है– एक बल्खखंड, दूसरा हिन्दूकुशखण्ड और तीसरा भारतीयखण्ड। पर अनेक भौगोलिक अड़चनों के कारण इन तीनों खण्डों को एक दूसरे से अलग कर देनार कठिन है।

भारतीय साहित्य में बल्ख का उल्लेख बहुत प्राचीन काल से हुआ है। महाभारत[2] से पता लगता है कि यहाँ खच्चरों की बहुत अच्छी नस्ल होती थी तथा यहाँ के लोग चीन के रेशमी कपड़ों, पश्मीनों, रत्न, गन्ध इत्यादि का व्यापार करतें थें। करीब एक सौ वर्ष पहले प्रसिद्ध अंगरेज यात्री अलेक्जेण्डर बर्नस् से बतख की यात्रा की थी। उसके यात्रा–विवरण से यहाँ के रहने वालों का तथा यहाँ की और रेगिस्तानों का पता चलता है। वर्नस् का कहना है कि इस प्रदेश में सार्थवाह रात में नक्षत्रों के सहारे यात्रा करते थें। जाड़ों में यह प्रदेश बड़ा कठिन हो जाता है लेकिन वसन्त में यहाँ पानी बरस जाता है, जिससे चरागाह हरे हो जाते हैं और खेती–बारी होने लगती है। बल्ख के घोड़े और ऊँट प्रसिद्ध है। यहाँ के रहने वालों में ईरानी नस्ल के ताजिक, उजबक, हजारा और तुर्कमान हैं।

बल्ख से हिन्दुस्तान का रास्ता पहले पटकेसर पहुँचता है, जहाँ समरकन्दवाला रास्ता उससे आकर मिलता है। यह महापथ तब तक विभाजित नहीं होता, जबतक कि वह ताशकुरगन के रास्ते के बालू के ढूहों को नहीं पार कर लेता।

हिन्दूकुश की पर्वतमाला में अनेक पगडंडियाँ है, पर रास्ते के लिहाज से वंक्षु, सिन्धु और उनकी सहायक नदियों की जानकारी आवश्यक है। पूर्व की और बहने वाली दो नदियाँ उत्तर में सुर्खाब और दक्षिण में गोरबन्द तथा पश्चिम में बहने वाली दो नदियाँ उत्तर में अंदराब तथा दक्षिण में पंजशीर है, इस तरह बल्ख का पूर्वी रास्ता अन्दराब की ऊँची घाटियों से होकर नीचे उतरता है। उसी तरह, पश्चिमी रास्ता गोरबन्द की घाटी से उतरने के पहले बाम्यान के उत्तर से निकलता है। इसी सड़क के रास्ते समय–समय पर अनेक जातियाँ और कबीले उत्तर–पश्चिम से होकर इस देश में आए और कुछ ही समय में इस देश की संस्कृति के साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर भारत के बाशिदों में ऐसा घुल–मिल गये कि ढूँढने पर भी उनके उद्‌गम का आज पता नहीं चलता। उत्तरापथ के इस महात्ता के कारण यह आवश्यक है कि हम उसका पूर्ण रूप से अध्ययन करें।

उत्तरापथ की पथ–पद्धति जानने के पहले इनके कुछ भौगेलिक आधारों को भी जान लेना आवश्यक है। भारत के उत्तर–पूरब में जंगलों से ढकी पहाड़ियाँ और घाटियाँ हैं जो मंगोल जाति को भारत मं आने से रोकती हैं फिर भी इन जंगलो और पहाड़ों से होकर मणिपुर और चीन के बीच एक प्राचीन रास्ता था, जिस रास्ते से चीन और भारत का थोड़ा–बहुत व्यापार चलता रहता था। इस वी–पूर्व दूसरी सदी में जब चीनी राजदूत चांगकिये न बल्ख पहुँचा, तब उसे वहाँ दक्षिणी चीन के बाँस देखकर कुछ आश्चर्य–सा हुआ। वास्तव

में, यूनान के ये बाँस असम के रास्ते मध्यदेश पहुँचते थे और वहाँ से बल्ख। इतना सब होते हुए भी उत्तर पूर्वी रास्ते का कोई विशेष महत्त्व नहीं था क्योंकि उसे पार करना कोई आसान काम नहीं था। हिमालय की उत्तर–पूर्वी रास्ते का कोई विशेष महत्त्व नहीं था क्योंकि उसे पार करना कोई आसान काम नहीं था। हिमालय की उत्तरी दीवार भाग्यवश उत्तर–पश्चिम में कुछ कमजोर पड़ जाती है। पर यहाँ, परिसिन्धु–प्रदेश में, जिसे प्रकृति ने बहुत ठंडा और वीरान बनाया है और जहाँ बरफ से ढकी चोटियाँ आकाश से बातें करती हैं, एक पतला रास्ता है, जो उत्तर की ओर चीनी–तुर्किस्तान की खाल की ओर जाता है। यह रास्ता इतिहास के आरंभ से भारतवर्ष को एशिया के ऊँचे प्रदेशों से जोड़ता है। पर, यह रास्ता सरल नहीं है; इस पर पथभ्रष्ट अथवा प्रकृति के आकस्मिक कोप से मारे गये हजारों बोझ ढोनेवाले जानवरों और उन सार्थवाहों की हड्डियाँ मिलती है; जिन्होंने अपने अदम्य उत्साह से संस्कृति और व्यापार के आदान प्रदान के लिए उसे खुला रखा। इस रास्ते का उपयोग मध्य एशिया की अनेक बर्बर जातियों ने भारत में आने के लिए किया। दुनिया के व्यापार–मार्गों में यह रास्ता शायद सबसे बदसूरत है। इसपर पेड़ों का नाम–निशान नहीं है और हिमराशि की सुन्दरता भी इस रास्ते पर नहीं मिलती क्योंकि हिमालय की पीठ के ऊँचे पहाड़ों पर बर्फ भी कम गिरती है। फिर भी, यह भारत का एक उत्तरी फाटक है और प्राचीन काल से इसका थोड़ा बहुत व्यापारिक और सामाजिक महत्व रहा है। इसी रास्ते पर गिलगिट के पास, एशिया के कई देशों की, यथा चीन, रूस और अफगानिस्तान की सीमाएँ मिलती है। इसलिए इसका राजनीतिक महत्व भी कम नहीं है।

तिब्बत पर चीन का कब्जा हो जाने से तथा चीन द्वारा इन विकट रास्तों को सामरिक महत्व प्रदान करने से हिमालय की अभेद्य दीवार इस समय रणांगण बनी हुई है। इन्हीं रास्तों से चीन ने भारत पर हमला किया। जिन रास्तों पर याक और घोड़े मुश्किल से चल पाते थे। उनपर इस समय ट्रक और रण–गाड़ियाँ दौड़ रही है। तिब्बत से सटे भारतीय इलाकों में भी सामाजिक महत्व की सड़कें बन रही है और हिमालय के जो प्रदेश दुर्ल्लघ्य समझे जाते थे, उनमें अब पहुँचना आसान हो गया है।

यह पूछना स्वाभाविक होगा कि गत पाँच हजार वर्षों में उत्तरी महाजनपथ में कौन–कौन सी तब्दीलियाँ हुई है। उत्तर साफ है। प्राकृतिक तब्दीलियों की तो बात ही जाने दीजिए, जिन देशों को यह रास्ता जाता है, वे आज भी वेसे ही अकेले बने हुए है, जैस प्राचीन युग में। हाँ, इस रास्ते पर केवल एक फर्क आया है और वह यह है कि प्राचीन काल में इसपर चलने वाल व्यापार चीनियों द्वारा तिब्बत दखल करने के पूर्व बहुत कम है लेकिन अब इसके अधिकांश पर फौज चलती है। अगर हम इस रास्ते की प्राचीन व्यापारिक महत्व समझ लें तो हमें पता चल जायगा कि 13वीं सदी में मंगोलों ने बल्ख और वाम्यान पर क्यों धावे बोल दियें और 13वीं सदी में क्यों अंग्रेज अफगानों को रोकते रहे। इस रास्ते का व्यापारिक महत्व तो कम हो ही गया है और इसका राजनीतिक महत्व सामने नहीं आया है। फिर भी, देश के विभाजन के बाद, भारत और पाकिस्तान के बीच कश्मीर के लिए चलने वाले युद्ध से इस रास्ते का महत्त्व

फिर हमारे सामने आया तथा चीन की युद्धनीति के कारण तो इसका महव और भी बढ़ गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसी रास्ते से होकर भारत पर अनगिनत चढ़ाईयाँ हुई और 19वीं सदी में भी रूसी साम्राज्यवाद के डर से अंग्रेज बराबर इसकी हिफाजत करते रहे। किसी भविष्य की चढ़ाई की आशंका से ही अंग्रेजों ने इस रास्ते की रक्षा के लिए खैबर और अटक की किलेबन्दियाँ की ओर पंजाब की फौजी छावनियाँ बनवाई। भारत के विभाजन हो जाने से अब इस रासते के एक भाग से सम्बद्ध सामरिक प्रश्न पाकिस्तान के जिम्मे हो गये है, फिर भी यह आवश्यक है कि उत्तर–पश्चिमी सीमा पर होने वाली हलचलो पर इस देश के निवासी अपना ध्यान रखें तथा अपनी वैदेशिक नीति इस तरह ढाले, जिससे ईरान अफगानिस्तान और पाकिस्तान मेलजाल के साथ इस प्राचीन पथ की रक्षा कर सकें। यहाँ हमारे कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि उत्तर–पश्चिमी महापथ ही इस देश में बाहर से आने का एक साधन है। हमारा तो यहाँ यही महतलब है कि यही रास्ता भारत को पश्चिम से मिलता था। अगर हम उत्तरी भारत, अफगानिस्तान, ईरान और मध्यपूर्व का नक्शा देखें, तो हमें पता चलेगा कि यह महापथ ईरान और सिन्धु के रेगिस्तान को बचाया हुआ सीधे उत्तर की ओर चित्राल और स्त्रात की घाटियों की ओर जाता है। प्राचीन और आधुनिक यात्रियों ने इस रास्ते की कठिनाइयों की ओर संकेत किया हैं, फिर भी वैदिक आर्य, कुरुष और दारा के ईरानी सिपाही, सिकन्दर और उसके उत्तराधिकारियों के यवन सैनिक, शक, पल्हव, तुखार, हूण और तुर्क बल्ख के रास्ते, इसी महापथ से भारत आये। बहुत प्राचीन काल में भी इस महाजनपथ पर व्यापारी, भिक्षु, कलाकार, चिकित्सक, ज्योतिषी, बाजीगर और साहसिक चलते रहे और इस तरह पश्चिम और पूर्व के बीच सांस्कृतिक आदान–प्रदान का वह एक प्रधान जरिया बना रहा। बहुत दिनों तक तो यह महापथ भारत और चीने के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का एकमात्र जरिया था, क्योंकि चीन ओर भारत के बीच का पूर्वी मार्ग दुर्गम था, जो केवल उसी समय खुला, जिस समय अमेरिका ने दूसरे महायुद्ध के समय चीन के साथ यातायात के लिए उसे खोल दिया, पर युद्ध समाप्त होते ही उस रास्ते को पुनः जंगलों ने घेर लिया। अब तो तिब्बत में चीनियों ने सेना के यातायात के लिए अनेक सड़के बनवा दी है, जिनसे भारत की सीमा की सुरक्षा का प्रबन्ध पर खतरा बढ़ गया हैं।

रोमन इतिहास से हमें हखामनी पथ–पद्धति का पता चलता है। ईसा की प्रारम्भिक सदियों में इन रास्तों से होकर चीन और पश्चिम के देशों में रेशमी कपड़ों का व्यापार चलता था। इस पथ–पद्धति में भूमध्यसागर से सुदूर पूर्व को जाने वाले रास्तों में तीन रास्ते मुख्य थे, जो कभी समानान्तर और कभी एक दूसरे की काटते हुए चलते थे। इस सम्बन्ध में हम उस उत्तर पथ को भी नहीं भूल सकते, जो काला सागर के उत्तर से होकर कैस्पियन समुद्र होता हुआ मध्य एशिया की पर्वतश्रेणियों को पार करके चीन पहुँचता था। हमें लालसागर से होकर भूमध्यसागर तक के समुद्री रास्ते को भी नहीं भूलना होगा, जिसमें हिप्पेलस द्वारा मौसमी हवा का पता लगा जाने पर जहाज किनारे–किनारे न चलकर बीच समुद्र से ही यात्रा कर सकते थे। लेकिन तीनों रास्तों में मुख्य रास्ता उपर्युक्त दोनों पथ–पद्धतियों के बीच से होकर गुजरता था। यह सिरिया,

ईराक और ईरान से होता हुआ हिन्दूकुश पार करके भारत पहुँचता था और पामीर के रास्ते चीन।

जैसा हम ऊपर कह आये हैं, मध्य हिन्दूकुश के रास्ते नदियों से लगकर चलते हैं। हिन्दूकुश के मध्य भाग में कोई बनी–बनाई सड़क नहीं है लेकिन उत्तरी भाग में बल्ख, खुल्म और कुन्दूज नदियों के साथ–साथ रास्ते हैं।

खावक दर्रे से होकर गुजरनेवाला रास्ता काफी प्राचीन है। महाभारत में कायव्य या कावख्य नामक एक जाति का नाम मिलता है।[3] शायद इसी जाति के नाम से खावक के दर्रे का नाम पड़ा यह बहुत कुछ संभव है कि कावख्य लोग हिन्दूकुश के पाद में सटी हुई पंजशीर और गोरबन्द की घाटियों में, जो पूरब की तरफ खावक के दर्रे को जाती हैं, रहते थे।

खावक के रास्ते पर बल्ख से ताशकुरगन की यात्रा वसन्त में तो सरल हैं पर गरमी में रेगिस्तान में पानी की कठिनाई होती है और इसलिए साथ इस मौसम में एक घुमावदार पहाड़ी रास्ता पकड़ते हैं। खुल्म नदी के साथ–साथ इस रास्ते पर हैबाक आता है। इसके बाद कुन्दूज नदी के साथ–साथ चलकर और एक कोतल पार करके रोबत–आक आकर का नखलिस्तान आता है शायद महाभारत–काल के कुन्दमान यहीं रहते थे।[4] यहाँ से चलकर रास्ता नरिन, यार्म तथा समन्दान होते हुए खावक आता है। इसके बाद बाई ओर कोकचा का रास्ता और लाजवर्द की खदानों को छोड़कर पाँच पड़ावों के बाद पंजशीर की ऊँची घाटी आती है। हिन्दूकुश को पार करने के लिए संगबूरान के गाँव से रास्ता घूमकर अन्दर खिंजान और दोखा पार करता है। दोशाख के बाद जेबलशिराज में बाम्यान से होकर भारत का पुराना रास्ता आता हैं।

बाम्यान का यह पुराना रास्ता बल्ख के दक्षिणी दरवाजे से निकलकर बिना किसी कठिनाई के काराकोतल तक जाता है। यहाँ से कपिश के पठार तक तीन घाटियाँ हैं, जिन्हें पहाड़ी रास्तों को छोड़ने के पहले पार करना पड़ता हैं।

बाम्यान के उत्तर में हिन्दूकुश और दक्खिन में कोहबाबा पड़ता हैं यहाँ के रहने वाले खासकर हजारा हैं। बाम्यान की आहमियत इसलिए है कि वह बल्ख और पेशावर के बीच में पड़ता है। बाम्यान का रास्ता इतना कठिन था कि उसपर रक्षा पाने के लिए ही, लगता है, व्यापारियों न भारी–भारी बौद्ध मूर्तियाँ बनवाईं।[5] बाम्यान छोड़ने के बाद दो नदियों और रास्तों का संगम मिलता है। इनमें एक रास्ता कोहबाबा होकर हेलमंद की ऊँची घाटी की ओर चला जाता है। सुर्खाब नदी के दाहिने किनारे की ओर से होकर यह रास्ता उत्तर की ओर मुड़ जाता है और गोरबन्द होते हुए वह कपिश पहुँच जाता है।

बाम्यान, सालंग और खावक के मिलने पर काफिरिस्तान और हजारजात की पर्वत–क्षेणियों के बीच में हिन्दूकुश के दक्षिणी पाद पर एक उपजाऊ इलाका है जो उत्तर से गोरबन्द और पंजशीर नदियों से और दक्षिण में काबुलरूद और लोगर से सींचा जाता है। यह मैदान बहुत प्राचीन काल से अपने व्यापार के लिए भी प्रसिद्ध था क्योंकि इस मैदान में मध्य हिन्दूकुश के सब दर्रे खुलते हैं। कपिश से होकर भारत से मध्य एशिया का व्यापार भी चलंता था। युवान् च्वांग[6] के अनुसार कपिश में सब देशों की वस्तुएँ उपलब्ध थीं बाबर का कहना है कि यहाँ

न केवल भारत की ही, बल्कि खुरासान, रूम और ईराक की भी वस्तुएँ उपलब्ध थीं।[7] वेग्राम की खुदाइयों से मिली वस्तुओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कम–से–कम कुषाण–युग में कापिशी का भारत और रोम के साथ निकटतर व्यापारिक संबंध था। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण इस मैदान में उस प्रदेश की राजधानी बनना आवश्यक था।

पाणिनि ने अपने व्याकरण (4/2/99) में कापिशी का उल्लेख किया है तथा महाभारत और हिंदू–यवन–सिक्कों पर भी कापिशी का नाम आता है। यह प्राचीन नगर गोरबन्द और पंजशीर के संगम पर बसा हुआ था, पर लगता है कि आठवीं सदी में इस नगर का प्रभाव घट गया क्योंकि अरब भौगोलिक और मंगोल इतिहासकार काबुल की बात करते हैं। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि काबुल दो थे। एक बौद्धकालीन काबुल जो लोगर नदी के किनारे बसा हुआ था और दूसरा मुसलमानों का काबुल, जो काबुलरूद पर बसा हुआ है। अमानुल्ला ने एक तीसरा काबुल दारूलग्रमान नाम से बसाना चाहा था, पर उसके बसने के पहले ही उन्हें देश छोड़ देना पड़ा। ऊँचाई के अनुसार काबुल की घाटी दो भागों में बँटी हुई है। एक भाग, जो जलालाबाद से अटक तक फैला हुआ है, भौगोलिक आधारपर भारत का हिस्सा है पर दूसरा ऊँचा भाग ईरानी पठार का है। इन दोनों हिस्सों की ऊँचाई की कमी–बेशी का प्रभाव उन हिस्सों के मौसम और वहाँ के रहनेवालों के स्वभाव और चरित्र में साफ–साफ देख पड़ता है।

काबुल से होकर भारतवर्ष के रास्ते काबुल और पंजशीर नदियों के साथ–साथ चलते हैं। पर, प्राचीन रास्ता काबुल नदी होकर नहीं चलता था। गोरबन्द नदी के गर्त्त से बाहर निकलकर पंजाब जाने के पहले वह दक्षिण की ओर घूम जाता था। कापिशी से लम्पक होकर नगरहार (जलालाबाद) का प्राचीन रास्ता पंजशीर की गहरी घाटी छोड़ देता था।

हमें इस बात का पता है कि आठवीं सदी में काबुल अफगानिस्तान की राजधानी थी पर टाल्सी के अनुसार ईसा की दूसरी सदी में भी काबुल करूर या कबूर (1/18/4) नाम से मौजूद था और इसका भग्नावशेष आज दिन भी लोगर नदी के दाहिने किनारे पर विद्यमान है। शायद अरखोसिया से बल्ख तक का सिकन्दर का रास्ता काबुल होकर जाता था। गोरबन्द नदी को एक पुल से पार करके यह रास्ता चारीकर पहुँचता है। खैरखाना पार करके यह रास्ता उपजाऊ मैदान में पहुँचता है, जहाँ प्राचीन और आधुनिक काबुल अवस्थित हैं।

काबुल से एक रास्ता बुतखाक पहुँचता है और वहाँ से तंग–ए गारू का गर्त्त पार करके वह महापथ से मिल जाता है। दूसरा रास्ता दाहिनी ओर पूरब की ओर चलता हुआ लताबन्द के कोतल में घुसता है और वहाँ से तेजिन नदी पर पहुँचता है। वहाँ से एक छोटा रास्ता करकचा के दर्रे से होकर जगदालिक के ऊपर महापथ से मिल जाता है लेकिन प्रधान रास्ता समकोण बनाता हुआ और तेजिन के उत्तर सेहबाबा तक जाता है, उसके बाद वह दक्षिण–पूर्ण की और घूमकर जगदालिक का रास्ता पार करता है। इसके बाद ऊपर–नीचे चलता हुआ वह सुर्ख पुल पर सुर्खाब नदी पार करता है और अन्त में गन्दमक पर वह पहाड़ी से बाहर निकल आता है। यहाँ से रास्ता उत्तर–पूर्वी दिशा पकड़कर

जलालाबाद पहुँच जाता है।

कापिशी से जलालाबाद वाला रास्ता कपिशी से पूर्व की ओर चलता है, फिर दक्षिण–पूर्व की ओर मुड़ता हुआ वह गोरबन्द और पंजशीर की संयुक्त धारा को पार करके निजराओ, तगाओं और दोग्राब होता हुआ म्रद्रावर के बाद काबुल और सुर्खरूद नदियों को पार करके जलालाबाद पहुँच जाता है।

जैसा हम ऊपर कह आये हैं, जलालाबाद (जिसे युवान् च्वाड ने ठीक ही भारत की सीमा कहा है) के बाद एक दूसरा प्रदेश शुरू होता है। सिकन्दर ने मौर्यों से इस प्रदेश को जीता था पर इस घटना के बीस वर्ष बाद सेल्यूकस प्रथम ने इसे मौर्यों को वापस कर दिया। इसके बाद यह प्रदेश बहुत दिनों तक विदेशी आक्रमणकारियों के हाथ में रहा पर अन्त में काबुल के साथ वह मुगलों के अधीन हो गया। 18वीं सदी में नादिरशाह के बाद वह अहमदशाह दुर्रानी के कब्जे में चला गया और अँगरेजी सलतनत के युग में वह भारत और अफगानिस्तान का सीमाप्रांत बना रहा।

सिन्ध और जलालाबाद के बीच में एक पहाड़ आता है, जो कुनार और स्वात की दूनें अलग करके पश्चिम में वृत्त बनाता हुआ सफेदकोह के नाम से दक्खिन और पश्चिम में जलालाबाद के सूबे को सीमित करता है।

गन्धार की पहाड़ी सीमा के रास्तों का कोई ऐतिहासिक वर्णन नही मिलता। एरियर का कहना है[8] कि सिकन्दर अपनी फौज के एक हिस्से के साथ काबुल नदी की बाईं ओर की सहायक नदियों की घाटियों में तबतक बना रहा, तबतक कि काबुल नदी के दाहिने किनारे से होकर उसकी पुरी फौज निकल नहीं गई। कुछ इतिहासकारों ने सिकनदर का रास्ता खैबर पर ढूँढने का प्रयत्न किया है; पर उन्हें इस बात का पता नहीं था कि उस समय तक खैबर का रास्ता नहीं चला था। इस संबंध मे यह जानने की बात है कि पेशावर पहुँचने के लिए खैबर पार करना कोई आवश्यक बात नहीं है। पेशावर की नींव तो सिकन्दर के चार सौ बरस बाद पड़ी। इसमें कोई कारण नहीं दीख पड़ता कि अपने गन्तव्य पुष्करावती, जो उस समय गंधार की राजधानी थी, पहुँचने के लिए वह सीधा रास्ता छोडकर टेढा रास्ता पकड़े। इसमे सन्देह नहीं कि उसने मिचनी दर्रे से, जो नगरहार और पुष्करावती के बीच में पडता है, अपनी फौज पार कराई।

भारत का यह महाजनपथ पर्वत–प्रदेश छोड़कर अटक पर सिन्ध पार करता है। लोगों का विश्वास है कि प्राचीन काल में भी महाजनपथ अटक पर सिन्ध पार करता था, पर महाभारत में[9] वृन्दाटक, जिसकों पहचान अटक से हो सकती है, का उल्लेख होने पर भी यह मान लेना कठिन है कि महाजनपथ नदी को वहीं पार करता था, क्योकि रास्ते की रखवाली के लिए वहाँ द्वारपाल रखने का भी उल्लेख महाभारत में है। ऐसा न मानने का कारण यह है कि प्राचीन काल में नदी के दाहिने किनारे पर उद्भांड (राजतरंगिणी), उदकभांड (युवान च्वाड्.), वेयंद (अलबेरूनी), ओहिंद (पेशावरी) अथवा उण्ड एक अच्छा घाट था। फारसी में उसे आज दिन भी दर–ए–हिन्दी अथवा हिंद का फाटक कहते हैं। यहीं पर सिकन्दर की फौज ने नावों के पुल से नदी पार की थी। यहीं यवान् च्वाड्. हाथी की पीठ पर चढ़कर नदी पार उतरा था तथा बाबर की फौजों ने भी इसी घाट का सहारा लिया था। अटक तो अकबर के समय में नदी पार

उतरने का घाट बन पाया।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महापथ का रास्ता तीन भागों में बाँटा जा सकता है– यथा (1) पुष्करावती पहुँचन के लिए जो मार्ग सिकन्दर और उसके उत्तराधिकारियों ने लिया, (2) वह रास्ता, जो चीनी यात्रियों के समय पेशावर होकर, उदकभाण्ड पर सिन्धु पार करता था और (3) आधुनिक पथ, जो सीधा अटक को जाता है।

जललाबाद से पुष्करावती (चारसद्दा) वाले रास्ते पर दक्का तक का रास्ता पथरीला है। उसके उत्तर में मोहमंद (पाणिनि, मधूमंत) और दक्षिण में सफेदकोह में शिनवारी कबीलें रहते है। दक्का के बाद पूरब चलते हुए दो कोतल पार करके मिचनी आता है। मिचनी के बाद नदियों के उतार की वजह से प्राचीन जनपथ के रास्ते का ठीक–ठीक पता नहीं चलता; पर भाग्यवश दक्खिन–पूर्व की ओर घूमती हुई काबुल नदी ने प्राचीन महापथ के चिह्न छोड़ दिये हैं। यहाँ हम सोत के बायें किनारे चलकर काबुल और स्वात के प्राचीन संगम पर, जो आधुनिक संगम से आगे बढ़कर है, पहुँचते है। यहीं पर गन्धार की प्राचीन राजधानी पुष्करावती थी, जिसके स्थान पर आज प्राड्., चारसद्दा और राजर गाँव हैं। यहाँ से महापथ सीधे पूरब जाकर होतीमर्दन जिसे युवान् च्वाङ्. ने पो––चा कहा है और जहाँ शहबाजगढ़ी में अशोक का शिलालेख है, पहुँचता था। यहाँ से दक्खिन–पूर्व की ओर चलता हुआ महापथ उण्ड पहुँचता था। सिन्ध पार करके महाजनपथ तक्षशिला के राज्य में घूमकर हसन अब्दाल होता हुआ तक्षशिला में पहुँचता था।

काबुल से पेशावर तक का रास्ता बाद का है। किवदन्ती है कि एक गड़ेरिये के रूप में एक देवता ने कनिष्क को संसार में सबसे ऊँचा स्तूप बनाने के लिए एक स्थान दिखलाया, जहाँ पेशावर बसा।[10] जो भी हो, ऐसे नीचे स्थान में जिसकी सिंचाई अफ्रीदी पहाड़ियों से गिरनेवाले स्रोतों, विशेष कर, बारा से होता है और जहाँ सोलहवीं सदी तक बाघ और गैंडों का शिकार होता था, राजधानी बनाना एक राजा की सनक ही कही जा सकती है।

ईसा की पहली सदी से पेशावर राजधानी बन बैठा और इसीलिए उसे कापिशी से जो भारतीय शकों की गरमी की राजधानी थी, जोड़ना आवश्यक हो गया। यह पथ खैबर होकर दक्का पहुँचता था, और इसी रास्ते की रक्षा के लिए अंग्रेजों ने किले बनवाये। दक्का से जमरूद के किले का रास्ता, दक्का और मिचनी के रास्ते से कुछ दूर पर, उतना ही ऊबड़–खाबड़ है। इसी रास्ते पर पाकिस्तान और अफगानिस्तान की सीमा है। लंडी कोतल के नीचे अली मस्जिद है। अंत में प्राचीन पथ आधुनिक रास्ते से होता हुआ पेशावर छावनी पहुँचता है।

तक्षशिला पहुँचने के लिए काबुल और स्वात की मिली धारा पार करनी पड़ती थी, पर खैबर के रास्ते ऐसा करना जरूरी नहीं था। पेशावर से पुष्करावती और होतीमर्दन होते हुए उण्ड का रास्ता दूर पड़ता था; पर उसपर हर मौसम में घाट चलते थे। नक्शे से पता चलता है कि काबुल नदी गन्धार के मैदान में आकर खुल जाती है। पूर्वकाल में कभी उसने अपना रास्ता किसी चौड़ी सतह में बदल दिया, जिसका नतीजा यह हुआ कि स्वात के साथ उसका

आधुनिक संगम चीनी यात्रियों के समय के संगम के नीचे पड़ता है। पुष्कारावती का अघःपतन भी शायद इसी कारण से हुआ हो।

बाबर ने पंजाब जाने के लिए एक सुगम घाट पार कियाा। इसका अर्थ है कि कोई दूसरा घाट भी था। कापिशी से पुष्करावती होकर तक्षशिला के मार्ग में बहुत–सी नदियाँ पड़ती थीं; लेकिन कापिशी और पुष्करावती के समाप्त हो जाने पर जब महापथ काबुल और पेशावर के बीच चलने लगा, तब उसका मतलब बहुत–से घाट उतरने से अपने को बचाना था। यह रास्ता काबुल नदी का दक्खिनी किनारा पकड़ता है, इसलिए आप–ही–आप वह अटक की ओर, जहाँ सिन्धु नद सँकरा पड़ जाता है और पुल बनाने लायक हो जाता है, पहुँच जाता है।

अगर हम भारतीय इतिहास के भिन्न–भिन्न युगों में हिन्दूकुश के उत्तरी और दक्खिनी रास्तों की चॉंच–पड़ताल करें, तो हमें पता चलता है कि सब युगों में रास्ते एक समान ही नहीं चलते थे। पहाड़ी प्रदेश में रास्तों में कम हेर–फेर हुआ है; पर मैदान में ऐसी बात नहीं है। उदाहरण के लिए बल्ख, बाम्यान, कापिशी, पुष्करावती और उद्भांड होकर तक्षशिला का रास्ता सिकन्दर और उसके उत्तराधिकारियों तथा अनेक बर्बर जातियों द्वारा व्यवहार में लाया जाता था। वही रास्ता आधुनिक काल में मजार दारीफ अथवा खानाबाद, बाम्यान या सालंग, काबुल पेशावर तथा अटक होकर रावलपिण्डी पहुँचता है। मध्यकालीन रास्ता इन दोनों के बीच में मिल–जुलकर चलता था। पुरुषपुर की स्थापना के बाद ही प्राचीन महापथ का रुख बदला और धीरे–धीरे पुष्करावती के मार्ग पर आना–जाना कम हो गया। आठवीं सदी में कापिशी के पतन और काबुल के उत्थान से भी प्राचीन राजमार्ग पर काफी असर पड़ा। नवीं सदी में जब काबुल और खैबर का सीधा सम्बन्ध हो गया, तब तो पुष्करावती का प्राचीन राजमार्ग बिलकुल ढ़ीला पढ़ गया।

इस प्राचीन महापथ का सम्बन्ध सिन्ध की तरफ बहनेवाली नदियों से भी है। टाल्मी के अनुसार, कुनार का पानी चित्राल की ऊँचाइयों में आता था और इसीलिए जलालावाद के नीचे नाव चलना मुश्किल था। अब प्रश्न यह उठता है कि टाल्मी किसी स्थानीय अनुश्रुति के आधार पर ऐसी बात कहता है क्या? क्योंकि आज दिन भी पेशावरियों का विश्वास है कि स्वात नदी बड़ी है और काबुल नदी केवल उसकी सहायकमात्र। उन दोनों के सम्मिलित स्रोत का नाम लण्डई है, जिसका पंजकोरा से मिलने के बाद स्वात नाम पड़ता है। स्थानीय अनुश्रुति में तथ्य हो या न हो, काबुल के राजधानी बनते ही उसके राजनीतिक महत्त्व से काबुल नदी बड़ी मानी जानी लगी। प्राचीन कुभा यानी काबुल नदी कहाँ से निकलती थी और कहाँ बहती थी, इसका ऐतिहासिक विवरण हमें नहीं प्राप्त होता; लेकिन यह खास बात है कि वह नदी प्राचीन मार्ग का अनुसरण करती थी और काबुल नदी के लिए उसकी विचार–संगीत की बोधक थी। अगर यह बात ठीक है तो कुभा नदी का नाम जलालाबाद के नीचे ही सार्थक न होकर उस स्रोत के लिए भी सार्थक है, जो प्राचीन राजधानियों के राजपथ को घेरकर चलता था।

खास बात है कि कापिशी, लम्पक, नगरहार और पुष्करावती पश्चिम

से बहने वाली काबुल नदी पर पड़ते थे। दाहिने किनारे पर काबुल और लोगर का जुला पानी केवल एक सोते–सा लगता है; इस तरह बढ़कर गोरबन्द पेशावर की ऊँचाइयों पर बहती हुई एक बड़ी नदी सिन्ध से मिल जाती है।[11]

बल्ख से तक्षशिला तक चलने वाले महापथ के बारे में हमें बौद्ध और संस्कृत–साहित्य में बहुत कम विवरण मिलता है। लेकिन, भाग्यवश महाभारत में उस प्रदेश के रहनेवाले लोगों के नाम आये है, जिनसे पता लगता है कि भारतीयों को उस महापथ का यथेष्ट ज्ञान था। अर्जुन के दिग्विजय–क्रम में[12] बाह्लीक के पूर्व बदख्शाँ, बखाँ और पामीर की घाटियों से होकर काशगर के रास्ते की ओर संकेत है। बदख्शाँ के द्वयक्षों का भारतीय को पता था।[13] कुन्दमान (म0भा0 2।48।13) शायद कुन्दूज की घाटी में रहनेवाले थे। इसी रास्ते से शायद लोग कबोज भी जाते थे। महाभारत को शक, तुखार और कंकों का भी पता था, जो उस प्रदेश में रहते थे, जिसमें वंक्षु नदी को पार करके सुग्ध और शकद्वीप होते हुए महाजनपथ यूरेशिया के मैदान के महामार्ग से मिल जाता था (म0 भा0 2।47।25)। बल्ख से भारत के रास्ते पर कार्पासिक का बोध कपिश से होता है (म0 भा0 2।47।7)। मध्य एशिया के रास्ते पर शायद काराकोरम को मेरु और कुएन लुन को मंदर कहा गया है तथा खोतन नदी को शीतोदा (म0 भा0 2।48।2)। इस प्रदेश के किरंदर लोगों को ज्योह, पशुप और खस कहा गया है, जिनसे आज दिन किरगिजों का बोध होता है। काशगर के आगे मध्य एशिया के महापथपर चीनों, हूणों और शकों का उल्लेख है (म0 भा0 2।47।19) इसी मार्ग पर शायद उत्तर कुरू भी पड़ता था, जिसका अपभ्रंश–रूप कोरैन, जिसकी पहचान चीनी इतिहास के लूलान से की जाती है।

सन्दर्भ सूची

1. मार्शल, साँची 1, पृ0 291–292
2. मोतीचन्द्र, जियोग्राफिकल एण्ड इकनामिक इन महाभारत, पृ0 90–91
3. महाभारत, 2।48।12
4. महाभारत, 2।48।13
5. फशे, उल्लिखित, पृ0 23
6. वाटर्स, आन युवान् च्वाङ् 1, 122
7. बेवरिज, बाबर्स मेमायर्स, पृ0 213
8. एरियन ञ्रानाबेसिस
9. महाभारत, 2।19।10
10. फूशे, उल्लिखित, पृ0 43
11. फूशे, उल्लिखित, 1,52
12. महाभारत 2।24।22–27
13. मोतीचन्द्र, उल्लिखित, पृ0 58–89